काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक

महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी का विद्यार्थियों के लिए सन्देश

सम्पादक
डॉ विश्वनाथ पाण्डेय

मालवीयजी बार बार कहते थे कि मनु के अनुसार –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

धैर्य, क्षमा, बुरी वृत्तियों का दमन करना, चोरी न करना, शौच, आत्मनिग्रह, विवेक, विद्या, सत्य, क्रोध न करना– ये धर्म के दश लक्षण हैं ।

तप की व्याख्या करते हुए मालवीय जी लिखते हैं – 'तप अपने उद्देश्य, प्रयोजन या गरज से अच्छा या बुरा, ऊँचा या नीचा, तामसिक, राजसिक और सात्विक एवं कायिक, वाचिक और मानसिक कहलाता है।' जो काम निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर , शम दम से सम्पन्न होकर, श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी या शरीर से किया जाता है, वह 'सात्विक तप' कहलाता है। मन को जीतना अर्थात् काम–क्रोध, लोभ–मोह से बचना और शुद्ध संकल्प युक्त रहना, किसी विषय–वृत्ति के कारण विक्षिप्त होकर फिर उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार कार्य में छल–कपट, धोखा और फरेब से मन को दूर रखना, मन को सात्विक बनाना यह 'मन द्वारा सात्विक तप' करना है। वाणी का सात्विक तप यह है कि जो वाक्य असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और खोटा हो उसको किसी भी समय किसी भी अवस्था में मुँह से न निकालना, बल्कि प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर वचन बोलना – यह वाणी द्वारा सात्विक तप करना है। शरीर से अर्थात् शरीर के अवयवों से, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों के द्वारा दूसरों की सहायता और सेवा करना, गिरे हुऐ को उठाना, देश और जाति के लिए, अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न कर, बल्कि यदि आवश्यकता हो तो धर्म और परोपकारार्थ प्राण अर्पण कर देना, यह 'काया का सात्विक तप' है। परन्तु अपनी स्तुति, मान, पूजा, सत्कार, प्रतिष्ठा और नाम या भोग–विलास के लिए इन्हीं सब कामों को मन, वाणी या शरीर द्वारा करना इनको राजसी बना देता हैं। जो तप अविवेक से, **दूसरों को हानि पहुँचाने, दिल दुःखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है**–'वह तामसी' है।

(अभ्युदय, १५ जनवरी, १९०९)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के

संस्थापक

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी

का

विद्यार्थियों के लिये सन्देश

सम्पादक

डॉ. विश्वनाथ पाण्डेय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशक
छात्र अधिष्ठाता
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005

प्रथम संस्करण : जुलाई 2008

मुद्रक :
रेनबो प्रिण्टर्स
सिद्धगिरिबाग, वाराणसी
फोन : 2420291

शुभाशंसा

मुझे प्रसन्नता है कि विश्वविद्यालय के नव प्रवेशार्थियों के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रातःस्मरणीय संस्थापक महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी की सद्वाणी और उनके उपदेशों पर आधारित पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है। महामना मालवीय जी का व्यक्तित्व विशाल और कृतित्व विहंगम है। उन्होंने शिक्षा, उद्यम, नैतिकता, आदर्श तथा पीढ़ियों के लिए जीवन भर प्रयास किया। भारतीय पुनर्जागरण के अग्रणी व्यक्तित्व महामना मालवीय जी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के वरिष्ठतम नेताओं में हैं तथा वे स्वतन्त्रता प्राप्ति तक सदैव देश का नेतृत्व करते रहे। पं. जवाहरलाल नेहरू का यह कथन कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं में सबसे बड़े हैं, सर्वथा उचित श्रद्धांजलि है। देश के पुनर्निर्माण के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना महामना की सर्वोत्कृष्ट कृति है, जिसके छात्र-छात्राओं ने संस्थापक के संकल्प को पूरा किया है। नव प्रवेशी छात्र-छात्रायें उनके संकल्प और आशीर्वचन को आत्मसात् करें और अपने जीवन को सार्थक करें, यह पुस्तिका इसी उदात्त उद्देश्य से प्रेरित है।

विश्वविद्यालय के सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी, डॉ. विश्वनाथ पाण्डेय ने अल्पकाल में इस पुस्तिका का सम्पादन कर समय से इसके वितरण हेतु प्रकाशन सुनिश्चित किया है, इसके लिए मैं उनकी सराहना करता हूँ। इस प्रक्रिया में प्रो. एस. एन. उपाध्याय, निदेशक, प्रौद्यौगिकी संस्थान द्वारा प्रदत्त सहयोग प्रशंसनीय है। पुस्तिका के मुद्रण एवं वितरण

सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिए प्रोफेसर वी. के. कुमरा, छात्र अधिष्ठाता के प्रयास की भी मैं प्रशंसा करता हूँ।

नवागन्तुक छात्र-छात्राओं को उनके भावी जीवन की सफलता की मेरी कामना है।

4 जुलाई, 2008

प्रोफेसर धीरेन्द्रपाल सिंह
कुलपति
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भूमिका

सन् 2006 के शैक्षणिक सत्र से विश्वविद्यालय के नवागन्तुक छात्र-छात्राओं को महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी की संक्षिप्त जीवनी से परिचित कराने हेतु हिन्दी और अंग्रेजी में लिखित एक पुस्तिका वितरित करने का निर्णय लिया गया। तदनुसार मेरे पास तैयार पुस्तिका (सम्पादित) तथा उसके अंग्रेजी अनुवाद का मुद्रण कर उसे वितरित किया गया, जिसका छात्र-छात्राओं ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया।

कुलपति, प्रोफेसर धीरेन्द्रपाल सिंह जी ने कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात् पहली ही मुलाकात में मुझे यह निर्देश दिया कि छात्र-छात्राओं का महामना मालवीय जी द्वारा प्रतिपादित जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित महनीय विचारों से परिचय कराने हेतु एक संक्षिप्त पुस्तिका तैयार कर वितरित की जानी चाहिए। यह उत्तम सोच है, क्योंकि महामना मालवीय जी जीवन के सर्वांगीण विकास के प्रबल पक्षधर थे। यह पुस्तिका यद्यपि उक्त संकल्प की पूर्ति का सत्प्रयास है तथापि इसमें त्रुटियाँ संभव हैं, जिनके लिए मैं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हूँ। सुधी पाठक अगर मुझे इन त्रुटियों से अवगत करा सकें तो परिवर्धित संस्करणों के प्रकाशन के समय उन्हें हम दूर करने हेतु सचेत होंगे।

इस पुस्तिका की पांडुलिपि में संशोधन, परिवर्धन के लिये मैं महामहोपाध्याय प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी, प्रो. एस.

एन. उपाध्याय (निदेशक, प्रौद्योगिकी संस्थान) तथा डा. सदाशिव द्विवेदी (रीडर, संस्कृत विभाग, कला संकाय) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस प्रकाशन हेतु उचित सामग्री का संकलन, पुस्तिका के अंत में सूचीबद्ध पुस्तकों के आधार पर किया गया है। जिज्ञासु पाठक विस्तृत जिज्ञासा की शांति उक्त पुस्तकों के अध्ययन से कर सकते हैं, जो सभी केन्द्रीय तथा अन्य पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं।

अन्त में मैं कुलपति महोदय के प्रोत्साहन के लिए विश्वविद्यालय परिवार की तरफ से पुनः कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मुझे विश्वास है कि उनकी भावना के अनुरूप विश्वविद्यालय के विद्यार्थी पूज्य महामना जी की सद्वाणी और उनके उपदेशामृत से लाभान्वित होंगे।

डा. विश्वनाथ पाण्डेय
सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी
काशी हिन्दू विशवविद्यालय,
वाराणसी

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया,
स्थद्वितीया, सं 2065
4 जुलाई, 2008

महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी भारत के स्वातन्त्र्य संघर्ष के युग के प्रदीप्त नक्षत्र हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के हलचल भरे ऐतिहासिक क्षितिज पर उनका समुदय भारतीय मेधा के चरम उत्कर्ष का निदर्शन है। महामना मालवीय जी भारतीय चिन्तन की उदारता, भारतीय जीवन पद्धति की सहिष्णुता, भारतीय राजनैतिक, आर्थिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष की समुज्ज्वलता के मूर्तिमान् प्रतीक हैं।

उनकी अमर कृति काशीहिन्दूविश्वविद्यालय प्राच्य एवं पाश्चात्त्य, प्राचीन एवं आधुनिक समस्त विद्याओं की राजधानी ही नहीं, अपितु भारत की राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का भी प्रतीक रही है। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय भारतीय स्वाधीनता संग्राम के युग में प्रेरणा एवं शक्ति के अजस्र स्रोत के रूप में भी अपनी भूमिका निभा चुका है।

काशीहिन्दूविश्वविद्यालय की उस गौरवपूर्ण परम्परा और उसके प्रतिष्ठाता महामना मालवीय जी के पवित्र व्यक्तित्व का स्मरण हमारे लिए प्रेरणा के नवीन द्वार खोलता है।

❖ आधुनिक भारत के निर्माता ❖

पण्डित मदनमोहन मालवीय जी, जिन्हें लोग सामान्यतः केवल 'महामना मालवीय' के नाम से जानते हैं, मूर्धन्य राष्ट्रीय नेताओं में अग्रणी थे। जितनी श्रद्धा और जितना आदर उनके लिए शिक्षित वर्ग में था, उतना ही साधारण वर्ग में भी था। देश की जनता में जितने लोकप्रिय मालवीय जी थे, उतना गाँधी जी और लोकमान्य

तिलक के सिवा शायद ही कोई अन्य नेता रहा हो। मालवीय जी की विद्वत्ता असाधारण थी और वे अत्यन्त सुसंस्कृत व्यक्ति थे। विनम्रता एवं शालीनता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। वे अपने युग के सवश्रेष्ठ वक्ता थे। वे संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों ही भाषाओं में निष्णात थे।

मालवीय जी का शरीर भव्य एवं सुन्दर तथा उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावोत्पादक था। वे वेशभूषा में ही नहीं, अपितु खान-पान, रहन-सहन तथा व्यवहार में भी सादगी की मूर्ति थे। ऋषिकल्प महामना जी एक दृढ़ आस्तिक तथा धर्मपरायण महापुरुष थे। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, जो उनकी सर्वोत्तम कृति है, में उन्होंने शिक्षा की आधुनिक पद्धति तथा साधनों का पूरा उपयोग किया। उन्हीं के शब्दों में 'वस्तुतः यह अखिल भारतीय विश्वविद्यालय है।' उनका जीवन ही युवकों के लिए महान् प्रेरणास्रोत था।

उनके स्तर के किसी अन्य नेता के पास जन-साधारण की पहुँच उतनी सहज नहीं थी, जितनी मालवीय जी के पास। लोग उनके साथ इतने प्रेम से बात कर सकते थे मानों वे उनके पिता, बन्धु अथवा मित्र हों, निर्धनों एवं पीड़ितों की सेवा-सहायता करना उनके जीवन का आदर्श ही नहीं था, अपितु उनके जीवन की वास्तविकता थी। लोक-सेवा का कार्य उनके लिए लोकप्रियता अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन नहीं था। गाँधीयुग से पहले राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में मालवीयजी का अद्वितीय स्थान था और गाँधीयुग में भी पहले की ही भाँति वे जनता के विश्वास-भाजन बने रहे। इतनी शक्ति और

प्रतिष्ठा प्राप्त होते हुए भी वे असाधारण रूप से विनम्र थे। अहंकार अथवा गर्व उनमें लेशमात्र भी नहीं था।

महात्मा गाँधी उन्हें बराबर अपना बड़ा भाई मानते रहे। वे मालवीय जी को 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा करते थे। पं. नेहरू ने कहा है– "मालवीय जी एक महामानव थे। वे उन लोगों में थे, जिन्होंने आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता की नींव रखी।" एक अन्य अवसर पर पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा है– "कांग्रेस जब से शुरू हुई, वे (महामना मालवीय जी) हमारे राजनैतिक आन्दोलन की खास पँहचान रहे हैं। उसे शुरू करने में, बनाने में और बढ़ाने में मालवीय जी का बहुत बड़ा हिस्सा रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय राजनीति में मालवीय जी अगुआ भी रहे और कड़ी भी रहे। वे उन लोगों को जोड़ते, जो कांग्रेस में आगे पीछे गिने जाते थे, यानी नरम और गरम दल वालों को। उनका स्वभाव ही बहुत विरोध करने का नहीं था। यह तो एक बहुत ऊँचे दर्जे की बात है कि वे अपनी राय पक्की रखते हुए भी सबसे मिलकर रहते थे और दूसरों को मिलाने की कोशिश करते थे।

.....उस समय के उन बड़े नेताओं में प्राचीन संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान मालवीय जी का रहा। यह एक अच्छी ही बात थी। यह वैसे भी अच्छी होती, लेकिन उस समय की स्थिति विशेष में तो यह बहुत ही अच्छी थी, क्योंकि देश कुछ भटक रहा था। मानो भटक गया था। .....उस समय बहुत सारे लोग थे, बड़े विद्वान् लोग थे, संस्कृति के बड़े पण्डित लोग भी थे, पर जहाँ तक

मेरा विचार है, राजनैतिक नेताओं में, बड़े नेताओं में मालवीय जी ही शायद इस मामले में सबसे आगे थे। वे रोकते थे अंग्रेजियत की बाढ़ को, पर विरोध करके नहीं, बल्कि अपने काम से, अपने विचारों से और कोशिश करते थे अपनी संस्कृति को बढ़ाने की। यह बड़ी भारी बात थी। विश्वविद्यालय के सामने उद्देश्य था, लक्ष्य था, आजकल के जमाने के विज्ञान और विज्ञान की औलाद यानी टेक्नोलॉजी, इण्डस्ट्री वगैरह को पुरानी भारतीय संस्कृति के साथ जोड़ना। एक माने में यह सबसे बड़ा काम था भारत के लिए। अब भी है, क्योंकि यह एक दो रोज का तो काम नहीं है।''

❖ महामना मालवीय ❖

ईश्वर-भक्ति और देश-भक्ति मालवीय जी के जीवन के दो मूलमंत्र थे। इन दोनों का उत्कृष्ट संश्लेषण, ईश्वर-भक्ति का देश-भक्ति में अवतरण तथा देश-भक्ति की ईश्वर-भक्ति में परिपक्वता उनके व्यक्तित्व के विशिष्ट सद्गुण थे। उनकी धारणा थी कि ''मनुष्य के पशुत्व को ईश्वरत्व में परिणत करना ही धर्म है। मनुष्यत्व का विकास ही ईश्वरत्व और ईश्वर है और निष्काम भाव से प्राणिमात्र की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है।

वे सार्वजनिक कार्यों के लिए जीवनभर साधन जुटाते रहे और 'प्रिन्स एमंग बेगर्स' 'भिक्षुकों में राजकुमार' कहलाए। वे महान् देश-भक्त, सत्त्विक जीवन जीने वाले मनीषी, जनसाधारण के सेवक, करुणा, सद्भावना और दया की मूर्ति, विदग्ध और उच्चकोटि के वक्ता, प्राणिमात्र से प्रेम करने वाले, शील के पर्याय, ललित कलाओं के प्रेमी

और आहार–विहार में सरलता एवं सात्त्विकता के प्रतीक थे।

गाँधी जी का कहना था कि ''मालवीय जी के साथ देश–भक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है।'' राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन के विचार में मालवीय जी ''आदर्श मनुष्य थे जिन्होंने राजनीति और शिक्षा दोनों क्षेत्रों में परिवर्तक, युगप्रवर्तक का काम किया।'' सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र राय का विचार था कि ''गाँधी जी के बाद कोई दूसरा ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है, जिसने इतना अधिक त्याग किया हो और बहुमुखी कार्यों का एक ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया हो जैसा कि मालवीय जी ने।''

श्री सी. वाई. चिन्तामणि का विचार है कि ''मालवीय जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो साबरमती के मनीषी (गाँधी जी) को कोष्ठक में रखने योग्य हैं।'' पण्डित हृदयनाथ कुँजरू का विचार है कि ''गाँधी जी को छोड़कर उनसे बड़ा भारतीय कोई नहीं हुआ।''

इसीलिए सारे देश ने उन्हें 'महामना मालवीय' कहकर अपने दिलों में स्थान दिया। महामना की जन्मशताब्दी जयन्ती के अवसर पर प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने कहा–

''ऐसे मौके पर जब याद करते हैं एक महापुरुष को, तो उनकी जीवनी से हम लाभ उठाएँ, सीखें। बहुत कुछ हम सीख सकते हैं एक थाती में। दुनिया का इतिहास क्या है? बहुत बातें हैं दुनिया के इतिहास में, एक थाती में कहा जाये तो दुनिया का इतिहास दुनिया के जो बहुत ऊँचे तबके के लोग हैं, उनकी जीवनियाँ हैं, वही इतिहास

है। एक थाती में यह सही बात है और बातें भी हैं, लेकिन असल में शायद सबसे जरूरी बात यही है।''

''हमारे सामने तो मालवीय जी के जीवन की कई ऐसी मिसालें हैं जिनसे हम सीख सकते हैं। उनके सामने जो लक्ष्य था, जैसे उन्होंने काम किया और सफलता पायी, इन सबसे हम सबक ले सकते हैं। हम मूर्तियाँ खड़ी करें, संस्थाएँ बनाएँ यह तो ठीक है, लेकिन आखिर में सबक सीखें उनकी जिन्दगी से, उनके काम से और सीखकर उसी रास्ते पर चलें, आजकल के जमाने में उसको अपनाकर चलें और आगे बढ़ें, तो यही उनका सबसे बड़ा स्मारक हो सकता है। यह अच्छा है कि जब आज समय आया है उनकी शताब्दी मनाने का, तो पुराने और नये लोग फिर सोचें, विचार करें और सीखें कि वे क्या क्या बातें थीं, जिससे मालवीय जी इतने ऊँचे महापुरुष हुए, कैसे उन्होंने भारत को आजादी के रास्ते में, अपनी संस्कृति का आदर करने के रास्ते में सबको आगे बढ़ाया और यह भी कि उनके बतलाए रास्ते पर चलकर भारत की सेवा हम किस तरह करें और आगे बढ़ें''।

❖ सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास ❖

महामना पं0 मदनमोहन मालवीय शिक्षा को मानव विकास का मूल मानते थे । लेकिन उनकी शिक्षा की परिकल्पना मात्र डिग्री प्राप्त करने तक नहीं, बल्कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य निर्धारण हेतु व्यापक थी। इसकी बुनियाद समग्र व्यक्तित्व, भौतिक एवम् आध्यात्मिक, दोनों पक्षों के विकास से प्रेरित थी।

महामना की दृष्टि भारतीय परंपरा से ओतप्रोत नैतिकता तथा धार्मिक आचरण, भावनात्मक रूप से सुदृढ़, मानवीयता के प्रति आग्रह, बड़ों, विद्वानों तथा गुरुजनों के प्रति आदर, कला और सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा देश-भक्ति से ओतप्रोत पीढ़ियों के निर्माण की थी। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय उनकी इसी परिकल्पना का जीवंत मंदिर है। उन्होंने इसी उद्‌देश्य को ध्यान में रखकर बड़े खेल के मैदान, व्यायामशालाएँ, गौशाला, गीता व्याख्यानमाला तथा मूल उद्‌देश्य के रूप में पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा को शामिल किया। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय विधेयक को तत्कालीन वायसराय की विधिक परिषद् (1915) में मंजूरी देते समय कतिपय सदस्यों ने धार्मिक शिक्षा की अनिवार्यता के प्रति संदेह व्यक्त किया था। महामना का प्रत्युत्तर 'सर्वधर्म-समभाव' का सार्वकालिक प्रतिस्थापन है तथा उससे सभी सदस्य संतुष्ट हो गये। उन्होंने कहा कि प्रस्तावित विश्वविद्यालय 'मतान्ध' नहीं होगा तथा यहाँ 'संकुचित साम्प्रदायिकता' को आश्रय नहीं दिया जायेगा, वरन् उन व्यापक और उदार धार्मिक भावनाओं को प्रोत्साहित किया जायेगा जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भ्रातृत्व की भावना का विकास करें।

महामना ने आशा व्यक्त की कि "ज्योति और जीवन का यह केन्द्र जो अस्तित्व में आ रहा है, उन छात्रों को तैयार करेगा जो ज्ञान में संसार के दूसरे मार्गों के छात्रों के समान ही नहीं होंगे, वरन् उत्तम जीवन बिताने में ईश्वर-भक्ति व देश-प्रेम में भी परिशिक्षित होंगे।" 1929 में दीक्षांत भाषण देते हुए महामना ने छात्रों से कहा "जो

शिक्षा तुमने यहाँ प्राप्त की है वह व्यर्थ है, यदि उसने तुममें अपने देश को स्वतंत्र और स्वशासित देखने की उत्कट आकांक्षा नहीं पैदा की।'' यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि महामना मालवीय जी ने विश्वविद्यालय स्थापना की मूल दृष्टि में 'राष्ट्रनिर्माण' का मूल लक्ष्य रखा था। इसी उत्कट उद्देश्य से प्रौद्योगिकी तथा अभियांत्रिकी, विज्ञान, कृषि, मानविकी, विधि तथा अन्य ऐसी सभी विधाओं के शिक्षण की व्यवस्था की जिनकी राष्ट्र को जरूरत थी। आज जब विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की शताब्दी की तरफ अग्रसर है (1916–2015) तब हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि जितनी सेवा देश की काशीहिन्दूविश्वविद्यालय के छात्रों ने की है वह अतुलनीय है। उन्होंने देश की आधारभूत संरचना को निर्मित करने में प्रभूत योगदान किया है, तथापि महामना गुरुजनों का आदर, विश्वविद्यालय की सेवा, उसकी मानमर्यादा और गौरव की रक्षा छात्रों के लिये परम आवश्यक समझते थे। उनका उद्देश्य और आशीर्वाद था :

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु ।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ।। (व्यास)

अर्थात् ब्रह्म की ज्योति अपने भीतर ही है। वह सब जीवधारियों में समान है। मनुष्य मन को अच्छी तरह शान्त और सुसमाहित कर उसे देख सकता है।

महामना मालवीय जी स्त्री–शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। उनके विचार से स्त्री–शिक्षा पुरुषों से अधिक जरूरी है क्योंकि वह पीढ़ियों का निर्माण करती है। उनका कथन

है–"वे हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्त्वज्ञानियों, व्यापार तथा कला–कौशल आदि की प्रथम शिक्षिकाएँ हैं।" विधायी परिषद् में बोलते हुए उन्होंने कहा था कि "एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के आधार पर स्त्रियों को इस तरह शिक्षित किया जाय कि उनमें प्राचीन तथा नवीन सभ्यताओं के सभी सद्गुणों का समन्वय हो और जो अपनी शिक्षा द्वारा भावी भारत के पुनर्निर्माण में पुरुषों से पूर्ण रूप से सहयोग कर सकें।" सन् 1911 के गोखले विधेयक पर बोलते हुए उन्होंने कहा था, "समाज के आधे भाग को ज्ञान की ज्योति से तथा उस उत्कृष्ट जीवन से जो ज्ञान द्वारा संभव है, वंचित रखना बहुत दुःखदायी होगा।"

उनके विचार में विद्यार्थियों का चरित्र–निर्माण शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है। सज्जनताविहीन ज्ञान, उनकी दृष्टि में, निरर्थक है। वे जीवनोत्कर्ष और राष्ट्र की उन्नति, दोनों के लिए चरित्र–निर्माण को बौद्धिक तथा व्यावसायिक विकास से कहीं अधिक आवश्यक समझते थे। उनकी तो धारणा थी कि 'पारस्परिक सद्भाव तथा सहयोग के बिना व्यावसायिक उन्नति हो ही नहीं सकती और जीवन में सद्भाव और सहयोग को विकसित करने के लिए चरित्र का निर्माण आवश्यक है।' उनके विचार में चरित्र ही मनुष्य को बनाता है, सदाचार मनुष्य का परम धर्म है, उसकी रक्षा मनुष्य का पुनीत कर्तव्य तथा उसकी वृद्धि उसका परम पुरुषार्थ है। मालवीय जी का कहना था कि 'राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को आचार के ही शासन से सदा शासित तथा प्रभावित रहना चाहिए, तभी उनमें विश्वास, मृदु भाषण तथा व्यवहार की सच्चाई और सद्गुणों का विकास हो सकता है।'

आचरण की शुद्धि, पुष्टि और परिपक्वता के लिए मालवीय जी धर्म, नागरिकता और नैतिकता की शिक्षा आवश्यक समझते थे। उनकी धर्म की व्याख्या नैतिकता से ओतप्रोत और नागरिकता से समन्वित थी। वे देश-भक्ति को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार करते थे। उनकी नैतिकता बहुत अंशों में धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित नैतिक आदर्शों पर आश्रित थी। आत्मोपम व्यवहार तथा निःस्पृही लोकसेवा उसके सर्वोत्तम सद्‌गुण थे, और ये दोनों श्रीमद्‌भगवद्‌गीता द्वारा प्रतिपादित समत्व, निष्काम सेवा तथा ईश्वरार्पण सत्कर्म के सिद्धान्तों पर आधारित थे। उनकी नागरिकता की व्याख्या लोकतांत्रिक थी। वह पाश्चात्त्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। उनके विचार जड़ता से रहित और आधुनिकता से प्रभावित और समन्वित थे। उनकी मूलधारणाएँ निर्विवाद थीं। वे कहते थे कि- ''सद्‌भावनाओं से अनुप्राणित, सदाचार से विभूषित जीवन ही आत्मोत्कर्ष और जनकल्याण का उत्तम साधन हो सकता है। देश-प्रेम की शिक्षा ही राष्ट्र का उद्धार कर सकती है। निःस्पृह देश-भक्त ही राष्ट्र की सच्ची ठोस सेवा कर सकता है। लोकतांत्रिक नागरिकता के मूल सिद्धान्तों पर आधारित लोकतांत्रिक चरित्र और व्यवहार ही लोकतन्त्र को स्थायी, सुदृढ़ और जनोपयोगी बना सकता है।''

मालवीय जी के विचार में मानव के सर्वांगीण विकास तथा उत्कृष्ट आनन्दमय जीवन के लिए विकासोन्मुखी व्यापक शिक्षा तथा चरित्र निर्माण के साथ-साथ स्वस्थ निर्मल जीवन, ज्ञान-विज्ञान का विस्तार, ललित कलाओं के

प्रति अभिरुचि तथा सुख-साधन की भौतिक सुविधाएँ भी आवश्यक हैं। स्वास्थ्य की रक्षा, शारीरिक शक्ति की पुष्टि को वे मानव का पुनीत कर्तव्य मानते थे। वे शरीर की रक्षा और पुष्टि के लिए 'युक्त आहार-विहार' तथा 'ब्रह्मचर्य' और 'व्यायाम' आवश्यक समझते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक विद्यार्थी पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करे तथा नित्य नियमित रूप से व्यायाम करे। उनका कहना था कि ''ब्रह्मचर्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार में सभी कष्टों और बाधाओं का साहस के साथ सामना कर सकतें हैं।'' वे प्रत्येक विद्यालय में व्यायाम के साधनों का समुचित प्रबन्ध आवश्यक समझते थे। उनके विचार में कतिपय प्राचीन और अर्वाचीन क्रीड़ा और व्यायाम के उपकरण स्वास्थ्य की रक्षा और शरीर की पुष्टि के साथ-साथ मनोरंजन तथा पारस्परिक सद्भाव और सहयोग की क्षमता की वृद्धि के उत्तम साधन भी बन सकते हैं और उनका प्रबन्ध विशेष रूप से वांछनीय है।

मालवीय जी यह भी चाहते थे कि विद्यालयों में संगीत, काव्य, नाट्यकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा मूर्तिकला आदि ललित कलाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध हो, और उनमें से कम से कम किसी एक कला में विद्यार्थी अवश्य ही दिलचस्पी लें। उनके विचार में कला-विहीन जीवन शुष्क और नीरस है, जबकि ललित कलाओं का ज्ञान, उनको परखने की क्षमता तथा शुद्ध भावनाओं के साथ उनके प्रति अभिरुचि और समयानुकूल उनका अभ्यास जीवन को सरस और आनन्दमय बनाता है।

मालवीय जी को अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक देन पर गर्व था। वे चाहते थे कि भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, दर्शन तथा अन्य भारतीय विद्याओं के अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसन्धान का समुचित प्रबन्ध हो तथा सभी विद्यार्थियों को उनकी रूपरेखा की जानकारी करायी जाये। उनकी धारणा थी कि वह शिक्षा-पद्धति अपूर्ण ही नहीं, निरर्थक और हानिकर है जिसके द्वारा नवयुवक को अपने देश और समाज की बौद्धिक समृद्धि की ठीक ठीक जानकारी न हो सके। उनके विचार में वह व्यक्ति क्या शिक्षित है, जिसका जीवन अपने पूर्वजों के सद्‌गुणों से अनुप्राणित नहीं, जिसे अपने पूर्वजों की महत्त्वपूर्ण देन का कोई ज्ञान नहीं, जिसे अपने देश के इतिहास की सही-सही जानकारी नहीं, जिसमें अपने जीवन को जनता से आत्मसात् करने की क्षमता नहीं। यद्यपि मालवीय जी भारतीय वाङ्मय का अध्ययन-अध्यापन, पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा और पुष्टि सामाजिक उन्नति के लिये आवश्यक समझते थे, तथापि उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण, उनकी बौद्धिक मान्यतायें व्यापक और उदार थीं। वे ज्ञान को किसी विशिष्ट जाति या देश की बपौती नहीं समझते थे। वे यह कभी नहीं मानते थे कि हमारे पास सब कुछ है, हमें दूसरों से कुछ लेना नहीं है। वे स्वीकार करते थे कि हमारे पूर्वजों की तरह दूसरे देश के विद्वानों ने भी अपनी प्रतिभा और योग्यता से संसार को अलंकृत किया है। सब विद्वानों का आदर तथा ज्ञान का आदान-प्रदान वे मानव प्रगति और राष्ट्र की उन्नति के लिये आवश्यक समझते थे। वे दूसरे देशों के विद्वानों के युक्तियुक्त

समाजोपयोगी विचारों को ग्रहण करने को सदा तैयार रहते थे। वे मनु, भीष्म, वशिष्ठ, शुक्र आदि विद्वानों के इस विचार से सहमत थे कि हमें अपने गुरुओं और पूर्वजों के सद्‌गुणों को ग्रहण करते हुए सब विद्वानों के युक्तियुक्त विचारों को, शुभ ज्ञान को विनयपूर्वक स्वीकार करना चाहिये, उनका अध्ययन अध्यापन करना चाहिये।

इस तरह मालवीय जी भारतीय विद्यार्थियों के लिये प्राचीन भारतीय दर्शन, साहित्य, संस्कृति और अन्य विद्याओं के साथ साथ अर्वाचीन नीतिशास्त्र, समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान, विधिविज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति का अध्ययन आवश्यक समझते थे। वास्तव में वे इन सब विषयों के प्राचीन भारतीय और अर्वाचीन पाश्चात्त्य विद्वानों के विचारों का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन आवश्यक समझते थे। वे विश्वज्ञान का समन्वय तथा विश्व के विद्वानों के सहयोगात्मक प्रयासों को मानव उन्नति के लिये आवश्यक समझते थे।

मालवीय जी का अपना काशीहिन्दूविश्वविद्यालय एक प्रकार से उनकी अपनी कल्पना का प्रतीक था। वह प्राच्य और अर्वाचीन विद्याओं का संगम, विश्व ज्ञान का विद्या मंदिर था। वर्तमान सभ्यता की अनुकरणीय तथा लाभदायक बातों के साथ भारतीय सभ्यता का उचित सामंजस्य उसका उद्‌देश्य था। प्राचीन भारतीय आयुर्वेद के साथ अर्वाचीन शल्यशास्त्र की शिक्षा का मेल, आयुर्वेदिक औषधियों का वैज्ञानिक परीक्षण तथा उन पर अनुसंधान, विभिन्न विषयों पर प्राच्य और अर्वाचीन ज्ञान का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन, प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शनशास्त्र,

साहित्य और इतिहास के गम्भीर अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ आधुनिक मनोविज्ञान, नीतिविज्ञान, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिविज्ञान आदि का अध्ययन-अध्यापन, वेद, वेदांग तथा संस्कृतसाहित्य और वाङ्मय की शिक्षा के अतिरिक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, धातुविज्ञान, खननविज्ञान, विद्युत् इंजीनियरिंग, यांत्रिक इंजीनियरिंग, कृषिविज्ञान आदि का अध्ययन इसकी विशेषता थी। यहाँ ईश्वर-भक्ति के साथ-साथ देश-भक्ति की शिक्षा दी जाती थी और विद्यार्थियों को राष्ट्र के जीवन का ज्ञान कराया जाता था। उन्हें समाज की सेवा के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। मालवीय जी की कामना थी कि उनका विश्वविद्यालय जीवन और ज्योति का केन्द्र बने और यहाँ के विद्यार्थी ज्ञान में संसार के दूसरे प्रगतिशील देशों के विद्यार्थियों के समान हों, तथा उत्कृष्ट जीवन बिताने के योग्य बनें, देश-भक्ति और भगवद्भक्ति से अपने जीवन को अनुप्राणित कर समाज की सेवा करें।

मालवीय जी चाहते थे कि जिस तरह प्राचीनकाल में भारत में गुरु सर्वसम्मानित था, उसी तरह अब भी सरकार, अधिकारी और विद्यार्थी गुरुओं के मान की रक्षा तथा उनके गौरव की वृद्धि अपना कर्तव्य समझें। इसके बिना शिक्षा की सुव्यवस्था असम्भव है।

मालवीय जी का विद्यार्थियों को उपदेश था-

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देश-भक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के सदा योग्य बनो।

वे चाहते थे कि विद्यार्थी सदा सत्य का आचरण करें, ब्रह्मचर्य और व्यायाम द्वारा अपनी जीवन शक्ति को परिपुष्ट करें, नियमित रूप से विद्याध्ययन कर अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास करें, स्वयं में अपने कुटुम्ब तथा अपने राष्ट्र की सेवा करने की क्षमता पैदा करें, सदा शुद्धता से रहें और शील का पालन करें, अपने सद्व्यवहार से अपने विद्यालय का गौरव बढ़ायें, गुरुजनों का आदर करें, सहपाठियों के साथ सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार करें, छोटे कर्मचारियों के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करें, अपने से छोटों की सेवा अपना कर्तव्य समझें, दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करें जिसे वह अपने प्रति किया जाना अनुचित समझें, उन कार्यों से डरें जो निकृष्ट और त्याज्य हैं, मातृ-भूमि से प्रेम करें, जनता की सुखवृद्धि करें, जहाँ कहीं भी अवसर मिले भलाई करें। वे चाहते थे कि विद्यार्थी अपने अवकाश तथा छुट्टियों में गाँवों में जाकर गाँव वालों के साथ काम करें, अविद्या रूपी अन्धकार को जो हमारी अधिकांश जनता को आच्छादित किए हुए है ज्ञान के प्रकाश से दूर कर दें। वे चाहते थे कि भारतीय शिक्षित सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ सेवा के भाव को अपने जीवन में विकसित कर अपने छोटे भाईयों के उत्थान के लिए अधिक से अधिक अपना समय तथा शक्ति लगावें, उनके साथ मिलकर काम करें, उनके शोक तथा आनन्द में उनका हाथ बटावें, और उनके जीवन को दिनोंदिन सुखमय बनाने का प्रयत्न करें। वे तो वास्तव में यह भी चाहते थे कि हम ईश्वर का स्मरण रक्खें, तथा यह विश्वास रखते हुए कि ईश्वर सभी प्राणियों में विद्यमान है अपने

अन्य जीवधारी भाईयों से अपना सच्चा सम्बन्ध प्रतिष्ठापित करें।

❖ धर्माधृत मानवता ❖

मालवीय जी की भागवत पर दृढ़ निष्ठा थी। भागवत में प्रतिपादित अद्वैतवाद और ईश्वरवाद का तथा भक्ति और निष्काम सेवा का सामंजस्य उन्हें स्वीकार था। ईश्वर पर उनकी अचल अगाध श्रद्धा थी। नित्य नियमित रूप से उसकी आराधना, तथा सदा उसका स्मरण वे प्रत्येक मानव का पुनीत कर्तव्य समझते थे। वे ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता, नियन्ता, तथा व्यवस्थापक', सारे विश्व का 'साक्षात्कार-कर्ता' समझते थे। उनके विचार में यह 'अद्वितीय शक्ति' निःसन्देह 'अविनाशी, सर्वव्यापक', 'सत्यज्ञानस्वरूप' एवं 'अनन्त' है। वह सभी धर्मों का मूलाधार तथा आराध्यदेव है। वे 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए 'ब्रह्मा, विष्णु, महेश' को इस ब्रह्म की तीन संज्ञाएँ मानते थे और सब देवी देवताओं को उसकी विभूतियाँ समझते थे। वे महर्षि वेदव्यास की इस बात को स्वीकार करते थे कि 'ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु' अर्थात् यह ज्योति अपने भीतर ही है, अन्यत्र नहीं है और सब जीवधारियों में एक, सम है। वे चाहते थे कि हम यह समझ कर कि 'वह सभी में विद्यमान है', अपने अन्य जीवधारी भाईयों से अपना 'सच्चा सम्बन्ध' स्थापित करें। इस तरह वे 'सर्वभूतेष्वात्मदेवता-बुद्धिः' के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए प्राणिमात्र के साथ 'आत्मोपम व्यवहार' ही न्यायसंगत तथा धर्मनिष्ठों का पुनीत

कर्तव्य समझते थे। वे इस सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोक को बार-बार दुहराते थे :-

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।। (6.32)

'हे अर्जुन! जो व्यक्ति, चाहे दुःख हो चाहे सुख, सब स्थितियों में अपनी उपमा से सबको समान देखता है, वह परम योगी है।'

समत्व के सिद्धान्त को वे सनातन-धर्म का ऐसा मूल मन्त्र स्वीकार करते थे जिसकी सिद्धि को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मनोयोग, नीतिशास्त्र सब ने निःश्रेयस अर्थात् आत्मोत्कर्ष और मोक्ष के लिए आवश्यक बताया है। समदृष्टा ही ज्ञानी, योगी, भक्त और सत्यनिष्ठ हो सकता है।

मालवीय जी कहते थे कि समत्व की आध्यात्मिक कल्पना कोरा सिद्धान्त नहीं है, वह तो साधना का मूल मन्त्र तथा लक्ष्य है। जीवन में उसका अवतरण सिद्धि के लिए आवश्यक है। आत्मौपम्य निष्पक्ष व्यवहार, तथा प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना उसका व्यावहारिक पक्ष तथा सामाजिक लक्ष्य है, जिसके बिना एक सामाजिक व्यक्ति के लिए समत्व की सिद्धि असम्भव है।

वे हमें बताते थे कि शास्त्रों में कहा गया है :-

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्।

महाभारत, शन्तिपर्व 59.22

'जो जो बात मनुष्य अपने लिए चाहता है, उसे चाहिए कि वही-वही बात औरों के लिए भी सोचे।'

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'

विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3.255.44

कर्तव्य समझते थे। वे इस सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोक को बार-बार दुहराते थे :-

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।। (6.32)

'हे अर्जुन! जो व्यक्ति, चाहे दुःख हो चाहे सुख, सब स्थितियों में अपनी उपमा से सबको समान देखता है, वह परम योगी है।'

समत्व के सिद्धान्त को वे सनातन-धर्म का ऐसा मूल मन्त्र स्वीकार करते थे जिसकी सिद्धि को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मनोयोग, नीतिशास्त्र सब ने निःश्रेयस अर्थात् आत्मोत्कर्ष और मोक्ष के लिए आवश्यक बताया है। समदृष्टा ही ज्ञानी, योगी, भक्त और सत्यनिष्ठ हो सकता है।

मालवीय जी कहते थे कि समत्व की आध्यात्मिक कल्पना कोरा सिद्धान्त नहीं है, वह तो साधना का मूल मन्त्र तथा लक्ष्य है। जीवन में उसका अवतरण सिद्धि के लिए आवश्यक है। आत्मौपम्य निष्पक्ष व्यवहार, तथा प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना उसका व्यावहारिक पक्ष तथा सामाजिक लक्ष्य है, जिसके बिना एक सामाजिक व्यक्ति के लिए समत्व की सिद्धि असम्भव है।

वे हमें बताते थे कि शास्त्रों में कहा गया है :-

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्।

महाभारत, शन्तिपर्व 59.22

'जो जो बात मनुष्य अपने लिए चाहता है, उसे चाहिए कि वही-वही बात औरों के लिए भी सोचे।'

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'

विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3.255.44

दूसरों के प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिए, जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेप में यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बात की कामना से किये जाते हैं।

मालवीय जी पूजापाठ के विधि-विधान पर तथा शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित कर्मकाण्ड पर विश्वास करते थे, तथा धर्म-जिज्ञासुओं के लिए उनकी थोड़ी बहुत व्याख्या भी करते रहते थे। पर उन्हें पशुबलि आदि हिंसात्मक प्रयोगों पर विश्वास नहीं था। वे उसे तामसिक प्रक्रिया समझते थे। समत्व और निष्काम लोकसेवा पर आश्रित कर्मयोग एवं ईश्वर को सब सत्कर्मों का समर्पण और उनके द्वारा भगवान् की अराधना ही उनको सर्वप्रिय थी। उनकी दृष्टि में भक्तियुक्त लोकसेवा ही अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। सब में समान रूप से अवस्थित ईश्वर की ''सर्वोत्तम'' पूजा यही है कि हम प्राणिमात्र में ईश्वर का सद्भाव देखें, सब में मित्रता का भाव रखें, और सबका हित चाहें। वे चाहते थे कि हम ''दीन निर्धन देशवासियों की सेवा द्वारा ईश्वर की उपासना करें, तथा सार्वजनीन प्रेम से इस सत्यज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें, जगत् से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें, और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें।''

वे कर्मकाण्ड और नैतिकता दोनों को धर्म का अंग स्वीकार करते थे, और उन्हें दोनों ही प्यारे थे। फिर भी धर्मविहित नैतिकता का प्रसार, तथा उसके आधार पर

सामाजिक व्यवहार का, और वैयक्तिक चरित्र का परिशोधन और नवनिर्माण ही उनका मुख्य काम था। अपने चरित्र और उपदेशों द्वारा इसका विस्तार ही उनकी जीवनचर्या थी।

मालवीय जी बार बार कहते थे कि मनु के अनुसार –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

मनुस्मृति 6.92

धैर्य, क्षमा, बुरी वृत्तियों का दमन करना, चोरी न करना, शौच (अन्तः एवं बाह्य), आत्मनिग्रह, विवेक, विद्या, सत्य, क्रोध न करना– ये धर्म के दश लक्षण हैं।

तप की व्याख्या करते हुए मालवीय जी लिखते हैं–'तप अपने उद्देश्य, प्रयोजन या गरज से अच्छा या बुरा, ऊँचा या नीचा, तामसिक, राजसिक और सात्त्विक एवं कायिक, वाचिक और मानसिक कहलाता है।' जो काम निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर, शम दम से सम्पन्न होकर, श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी या शरीर से किया जाता है, वह **'सात्त्विक तप'** कहलाता है। मन को जीतना अर्थात् काम–क्रोध लोभ–मोह से बचना और शुद्ध संकल्प युक्त रहना, किसी विषय–वृत्ति के कारण विक्षिप्त होकर भी उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार कार्य में छल–कपट, धोखा और फरेब से मन को दूर रखना, मन को सात्विक बनाना यह **'मन द्वारा सात्त्विक तप'** करना है। वाणी का सात्त्विक तप यह है कि जो वाक्य असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और खोटा हो उसको

किसी भी समय किसी भी अवस्था में मुँह से न निकालना; बल्कि प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर वचन बोलना–यह **'वाणी द्वारा सात्त्विक तप'** करना है। शरीर से अर्थात् शरीर के अवयवों से, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों के द्वारा दूसरों की सहायता और सेवा करना, गिरे हुओं को उठाना, देश और जाति के लिए अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न कर, बल्कि यदि आवश्यकता हो तो धर्म और परोपकारार्थ प्राण अर्पण कर देना, यह **'काया का सात्त्विक तप'** है। परन्तु अपनी स्तुति, मान, पूजा, सत्कार, प्रतिष्ठा और नाम या भोग-विलास के लिए इन्हीं सब कामों को मन, वाणी या शरीर द्वारा करना इनको राजसी बना देता है। जो तप अविवेक से, दूसरों को हानि पहुँचाने, दिल दुःखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है–'वह तामसी' है। अभ्युदय के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा– ''इन रूपों का भिन्न भिन्न वर्णन करने से अभिप्राय यह है कि लोग अपने अपने मन, वाणी, शरीर की परीक्षा करें और सात्त्विक तपों को ग्रहण करते हुए राजसी और तामसी को त्याग दें।''

वे कहते थे :-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

''नीति निपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी जाय या रहे, आज ही मृत्यु हो या युगान्तर में हो, परन्तु

धीर पुरुष न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते।''

सदाचार की महिमा का वर्णन करते हुए वे कहते थे-

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर् लोकापवादाद् भयम्।
भक्तिश्चक्रिणि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
येऽप्येते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ।।

''सज्जनों के सत्संग में इच्छा, पराये के गुणों से प्रीति, गुरु के साथ नम्रता, विद्या में व्यसन, अपनी स्त्री में प्रीति, लोकनिन्दा से भय, विष्णु की भक्ति, आत्म-दमन की शक्ति, दुष्टों के संसर्ग से मुक्ति, ये निर्मल गुण जिनमें बसते हैं, उन महापुरुषों को नमस्कार है।''

भारतीय शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित नैतिक नियमों तथा सदाचार की महिमा का विस्तृत दिग्दर्शन कराते हुए वे कहते थे कि ''सदाचार के सेवन से, सत्कर्म करने से, शूद्र भी द्विजत्व को पहुँच सकता है और दुराचार अर्थात् बुरे कर्म करने से ब्राह्मण भी नीचे गिर कर शूद्रता को पहुँच सकता हैं।''

मालवीय जी ने बताया कि महाभारत में कहा गया है-

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा।
यथाऽपकर्षं पापेन इति शास्त्रनिदर्शनम् ।।
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ।।

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो दया ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ।।

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः ।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः ।।

मनुष्य पुण्यकर्म से वर्ण के उत्कर्ष को तथा पापकर्म से अपकर्ष को अर्थात् पतन को प्राप्त करता है, यह शास्त्र का निर्देश है।

शील-सम्पन्न शूद्र भी गुणवान् ब्राह्मण के समान हो जाता है। क्रियाहीन ब्राह्मण भी शूद्र से गिरा हो जाता है।

सत्य, दान, क्षमा, शील, कटुता का अभाव, तप और दया जहाँ दिखाई दे, नागेन्द्र, वह ब्राह्मण है-ऐसा स्मृतियों का कहना है।

जो शूद्र आत्मसंयम, सत्य, धर्म में सदा प्रगति करता हुआ हो, उसे मैं ब्राह्मण मानता हूँ। सदाचरण से ही द्विज होता है।

श्रीमद्भागवत में भी सातवें स्कन्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अलग अलग गुणों का वर्णन करते हुए नारदजी ने कहा है -

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जनम् ।
यद्यन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ।।

पुरुष में वर्ण को प्रकट करने वाला जो लक्षण कहा है, जहाँ दूसरों में भी वही लक्षण दिखाई दे तो उसको उसी गुणवाले वर्ण के नाम से बताना चाहिए।

मालवीय जी के विचार में "इन वचनों से यह स्पष्ट है कि यदि जन्म से ब्राह्मण होने वाला भी अपने धर्म

से रहित हो जाय या कुकर्म करने लगे तो वह शूद्र से भी नीचे गिर जाता है और नीच से नीच शूद्र भी यदि अच्छे आचरणों को ग्रहण करे और ऊँचा पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे तो वह भी ब्राह्मण के समान मान पाने योग्य हो जाता है।''

मालवीयजी ने 'अन्त्यजोद्धारविधि' पुस्तक में बहुत सी कथाओं और माहात्म्यों का उदाहरण देते हुए लिखा है कि इन सबका तात्पर्य यही है कि ''मनुष्य चाहे पहले कैसा ही स्वाभाविक या नैमित्तिक दोषों से युक्त क्यों न हो, यदि वह मन्त्रदीक्षा, भक्तिभावना और सदाचार से सम्पन्न हो जाता है, तो वह दोषनिर्मुक्त होकर सम्मान्य, आदरणीय और स्वर्ग का सामाजिक साधारण धर्माधिकारी हो जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि उसकी बीजसम्बन्धी और शरीरसम्बन्धी अपवित्रता चली जाती है। वे यह भी चाहते थे कि ''सार्वजनिक स्थानों से वर्णभेद का प्रश्न हटा दिया जाय।''

हिन्दू धर्म के प्रति मालवीय जी की दृढ़ निष्ठा थी। वे अपने सनातन-धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझते थे, पर उनकी निष्ठा, सहिष्णुता से समन्वित थी। वे समान रूप से सब धर्मों, धर्मग्रन्थों, धर्मगुरुओं का आदर करना, सब धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का कर्तव्य समझते थे। वे ''मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, गिरजा सबको सम्मान के काबिल'' समझते थे और कहते थे कि ''जब मैं किसी गिरजा या मस्जिद के पास से गुजरता हूँ, तब मेरा सिर सम्मान से झुक जाता है।'' यद्यपि उन्होंने शुद्धि आन्दोलन को प्रोत्साहित किया, अपने धर्म का व्यापक प्रसार और शास्त्रसंगत प्रचार

हिन्दुओं का कर्त्तव्य बताया, फिर भी उन्होंने कभी किसी दूसरे धर्म, धर्मगुरु या धर्मग्रन्थ की निन्दा नहीं की। उनका कहना था कि ''मैं सदैव अपने धर्म का दृढ़ विश्वासी और पाबन्द हूँ, किसी के धर्म का अपमान करने का ख्याल तक मेरे दिल में कभी नहीं आया।'' वे चाहते थे कि धर्मप्रचार का काम बहुत शांति और धैर्य से होना चाहिए। वह इस रीति से करना चाहिए कि जिससे किसी को क्लेश न पहुँचे। एक दूसरे को कटुवचन कहने से रोकना चाहिए, और ऐसे उपाय सोचने चाहिए जिनसे प्रीति और मित्रता बढ़े। उन्होंने अपने धर्म की कतिपय प्रचलित पद्धतियों की यदा-कदा समीक्षा भले ही की हो, पर उन्होंने किसी दूसरे धर्म की आलोचना कभी नहीं की। वे यह स्वीकार करते थे कि सत्य और ईश्वर की आराधना सब धर्मों का मूलाधार है, कतिपय मूलभूत सद्‌गुण सभी धर्मों में विद्यमान हैं, जीवनसिद्धि के अनेक मार्ग हैं, मानव अपनी रुचि और परम्परा के अनुकूल अपना मार्ग निश्चित कर दृढ़ निष्ठा से उस पर चल कर सद्‌गति प्राप्त कर सकता है। वे चाहते थे कि हिन्दू 'पक्का हिन्दू' और मुसलमान 'पक्का मुसलमान' बने, दोनों ईश्वर भक्त हों, सब अपने धर्म के सिद्धान्तों को अच्छी तौर पर समझें। उनकी धार्मिक सहिष्णुता ने वास्तव में धार्मिक सद्‌भावना का ऐसा अपूर्व रूप धारण कर लिया था कि उन्होंने सत्तर वर्ष की आयु में समुद्र-यात्रा करते हुए जहाज में बाइबिल हाथ में लेकर पूर्ण निष्ठा के साथ ईसाइयों की उपासना में निःसंकोच भाग लिया। वे मनुष्यता को जाँति-पाँति और साम्प्रदायिक भेदों से ऊँचा समझते थे।

मालवीय जी स्वीकार करते थे कि शास्त्रविहित विधियों का यन्त्रवत् अनुकरण निःसंन्देह हानिकर है तथा हमारे नित्यकर्मों में कई ऐसी प्रथाओं का समावेश हो गया है जो किसी प्रकार शास्त्रविहित नहीं हैं। वे परम्पराओं का परिशोधन तथा प्रगति का नियमन, समाजोत्थान और जीवनोत्कर्ष के लिए परमावश्यक समझते थे। पर उनके विचार में आधुनिक सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में शास्त्रों का गूढ़ अध्ययन करने पर प्रचलित परम्पराओं को शास्त्र के आधार पर भी बहुत हद तक संशोधित किया जा सकता है, और उन्होंने स्वयं सुधार के काम में इसी प्रथा का सदा अनुसरण किया। उनका कहना था कि ''मैं शास्त्र की रस्सी थाम कर चलता हूँ, और मैं जो कुछ कहता हूँ शास्त्र के आधार पर कहता हूँ।'' उनकी धारणा थी कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के विश्वजनीन आदेशों का अनुसरण प्राचीन परम्पराओं की जड़ताओं को दूर कर सकता है, जीवन को मानवीय, प्रगतिशील और समाजोपयोगी बना सकता है।

मालवीय जी की धार्मिक अवधारणाएँ मानवकल्याण की भावना से अनुप्राणित थीं। कल्याण की वृद्धि को वे सब वर्णों और आश्रमों का लक्ष्य स्वीकार करते थे। उनके विचार में निष्काम भाव से समाज की सेवा ही परम तप और परम धर्म है। निष्काम भाव के महत्व की व्याख्या करते हुए वे कहते थे कि ''जो लोग निष्काम भाव से काम नहीं करते–उन लोगों में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं और कार्य सफल नहीं होने पाता है। किन्तु जहाँ निष्काम भाव से कार्य होता है, वहाँ लोग दूसरे की

सफलता देख कर प्रसन्न होते हैं, और एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है; और कार्य में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होती है। सकाम भाव से काम करनेवाले लोग यह समझ कर कि जो काम हम करते हैं, वह ईश्वर का काम ही है, और इसमें ईश्वर हमारा सहायक है, किसी विघ्न या बाधा से पीछे नहीं हटते।'' तप की व्याख्या करते हुए उन्होंनें कहा कि सच्चे तप का भाव उस देशभक्त में है जो अपने देश एवं अपनी जाति के गौरव और प्रतिष्ठा, कीर्ति और मान, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की वृद्धि और उन्नति के लिए दृढ़ इच्छा रखता है। अनेक प्रकार के दुःखों, संकटों और कष्टों को सहन करने, कठिन से कठिन मेहनत और श्रम को उठाने और विघ्नों का मुकाबला करने के लिए उद्यत रहता है। सच्चे देश-प्रेमी देशानुरागी कल्याण की इच्छा करके, तप का अनुष्ठान करके तथा आत्मा और मन को धर्माचरण रूपी प्रचण्ड अग्नि में दग्ध करके अपने और अपने देश की अपवित्रता, मलिनता और अन्य अशुद्धियों को दूर कर जाति को आरोग्य एवं सुख-सम्पत्ति की योग्यता प्रदान करते हैं।

*

❖ उद्धृत पुस्तकें ❖

1. महामना मदनमोहन मालवीय–जीवन और नेतृत्व, लाल, मुकुटबिहारी, पृ. 690, मालवीय अध्ययन संस्थान, मालवीय भवन, का.हि.वि.वि., (1978)।
2. History of the Banaras Hindu University, Dar, S.L. and Somaskandan, S., Publication Cell, BHU, (2007).
3. Mahamana Madan Mohan Malaviya—An Historical Biography, P. 1162 (II-Volume), Parmanand, BHU, (1985).
4. महामना पं. मदनमोहन मालवीय की जीवनी, तिवारी, वेंकटेश नारायण, पृ. 238, का.हि.वि.वि., (1965)।
5. मदनमोहन मालवीय, मिश्र जगन्नाथ प्रसाद, पृ. 97, जवाहरलाल नेहरू काँग्रेस शताब्दी समिति, नयी दिल्ली, (1987)।
6. आधुनिक भाषा के निर्माता : मदनमोहन मालवीय, चतुर्वेदी सीताराम, पृ. 133, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली–11001, चतुर्थ संस्करण, (1985)।
7. महामना श्री पण्डित मदनमोहन मालवीय के लेख और भाषण (भाग–1–धार्मिक), अग्रवाल, वासुदेवशरण, (1962)।

*

❖ महामना पं. मदनमोहन मालवीय ❖

25 दिस.,	1861	प्रयाग में जन्म।
सन्	1878	मिर्जापुर में कुन्दनदेवीजी से विवाह।
सन्	1884	कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.ए. परीक्षा में उत्तीर्ण।
जुलाई,	1884	इलाहाबाद जिला स्कूल में अध्यापक।
दिस.,	1886	कलकत्ते में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में काँग्रेस का दूसरा अधिवेशन। कौंसिलों में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर भाषण।
जुलाई,	1887	कालाकांकर में 'हिन्दोस्थान' पत्र का सम्पादन कार्य प्रारम्भ। भारत धर्ममण्डल का स्थापनासम्मेलन।
सन्	1889	हिन्दोस्थान पत्र का सम्पादन कर प्रयाग में वकालत की पढ़ाई प्रारंभ।
सन्	1891	वकालत की परीक्षा पास करके जिला अदालत में वकालत प्रारम्भ।
दिस.,	1893	प्रयाग हाई कोर्ट में वकालत।
मार्च,	1898	संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के लेफ्टिनेंट गवर्नर को हिन्दी के सम्बन्ध में ज्ञापन।
सन्	1902-03	प्रयाग में मालवीयजी द्वारा हिन्दू बोर्डिंग हाउस का निर्माण।
सन्	1903-12	प्रान्तीय कौंसिल की सदस्यता- मालवीयजी द्वारा कौंसिल में प्रान्त की महत्त्वपूर्ण सेवा।

सन्	1904	काशीनरेश की अध्यक्षता में विश्व-विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव।
जन.,	1906	कुम्भ के अवसर पर प्रयाग में मालवीयजी द्वारा आयोजित सनातन धर्म महासभा का अधिवेशन। उदार सनातन धर्म का प्रचार। काशी में भारतीय विश्वविद्यालय खोलने का निर्णय।
सन्	1907	मालवीयजी के सम्पादकत्व में 'अभ्युदय' का प्रकाशन, लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और उदार हिन्दू धर्म का प्रसार।
सन्	1909	प्रयाग में मालवीयजी के सम्पादकत्व में 'लीडर' पत्र का प्रकाशन। लाहौर में काँग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता।
सन्	1910-20	भारतीय कौंसिल की सदस्यता तथा योगदान।
अक्टू.,	1910	हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण।
28 नव.,	1911	हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी का गठन।
दिस.,	1911	पचास वर्ष की आयु होने पर वकालत का त्याग। सारा जीवन राष्ट्र की सेवा में बिताने का दृढ़ संकल्प। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय की स्थापना के लिए विशेष प्रयत्न करने का निर्णय।

फर., 1915	मालवीयजी की अध्यक्षता में प्रयाग सेवा समिति का गठन।
अक्टू., 1915	काशीहिन्दूविश्वविद्यालय बिल पारित।
4 फर., 1916	काशीहिन्दूविश्वविद्यालय का शिलान्यास समारोह।
मार्च, 1916	प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा के विरुद्ध कौंसिल में प्रस्ताव।
सन् 1916	हरिद्वार में गंगा की माँग।
सन् 1916–18	औद्योगिक समिति के सदस्य।
सन् 1918	सेवासमिति द्वारा स्काउट असोसिएशन का गठन।
दिस., 1918	दिल्ली में काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता।
फर., 1919	रौलेट बिल पर कौंसिल में बहस (कौंसिल से इस्तीफा)।
नव., 1919 से सित., 1939 तक	काशीहिन्दूविश्वविद्यालय के कुलपति।
19 अप्रैल, 1919	बम्बई में मालवीयजी की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन।
जन., 1922	सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन।
16 दिस.,1922	लाहौर में हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द पर भाषण, असेंबली में मालवीयजी और जिन्ना द्वारा इंडिपेंडेंट पार्टी का गठन। उसके बाद स्वराज्य पार्टी से मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी का गठन।

सन्	1924	प्रयाग में संगम पर सत्याग्रह। फौलाद संरक्षण विधेयक पर बहस। ब्रिटिश कम्पनियों को बाउण्ड्री देने का विरोध।
अग.,	1926	मालवीयजी और लाजपत राय के नेतृत्व में काँग्रेस इंडिपेंडेंट पार्टी का गठन।
फर.,	1927	कृषि आयोग के सामने गवाही।
दिस.,	1929	काशीहिन्दूविश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दीक्षान्त भाषण। विद्यार्थियों को देशसेवा और राष्ट्रीयता का उपदेश।
सन्	1930	असेम्बली से इस्तीफा। दिल्ली में गिरफ्तारी। छः मास की सजा।
5 अप्रैल,	1931	कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भाषण।
सन्	1931	महात्मा गाँधी के साथ लन्दन में गोल-मेज कांन्फ्रेंस में भागीदारी।
मार्च	1932	वाराणसी में मालवीयजी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्वदेशी संघ का गठन।
20 अप्रैल,	1932	काँग्रेस का दिल्ली अधिवेशन। मनोनीत अध्यक्ष मालवीयजी की गिरफ्तारी।
सित.,	1932	अन्त्यजोद्धार पर बम्बई में सभा की अध्यक्षता।
अप्रैल,	1932	काँग्रेस के कलकत्ता अध्यक्ष। मालवीयजी की आसनसोल में गिरफ्तारी।

अग.,	1934	काशी में गाँधीजी की सभा में हरिजनोद्धार पर भाषण। काँग्रेस-नेशनलिस्ट पार्टी का गठन।
जन.,	1936	प्रयाग में मालवीयजी के नेतृत्व में सनातन धर्म महासभा का अधिवेशन। अन्त्यजोद्धार पर प्रस्ताव।
सन्	1938	कायाकल्प।
नव.,	1939	विश्वविद्यालय के आजीवन रेक्टर नियुक्त।
सन्	1941	गोरक्षामण्डल की स्थापना।
जन.,	1942	काशीहिन्दूविश्वविद्यालय की रजत-जयंती। गाँधीजी का दीक्षान्त भाषण।
12 नव.,	1946	शरीरान्त।

*

❖ वचनामृत ❖

पृथ्वी-मंडल पर जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है, वह धर्म है और वह धर्म सनातनधर्म है।

***

यह शरीर परमात्मा का मन्दिर है। ईश्वर को सदैव अपने भीतर अनुभव और इस मन्दिर को कभी अपवित्र न होने दो।

***

इस पवित्र मन्दिर का रक्षक ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार को जीत सकते हैं।

***

आह्निक (डायरी) लिखने से मनुष्य को उन्नति में बहुत सहायता मिलती है। डायरी में अपना हृदय खोलकर रख दो।

***

सभी कार्यों में शीलवान् बनो। शील ही से मनुष्य, मनुष्य बनता है। शीलं परं भूषणम्-शील ही पुरुष का सबसे उत्तम भूषण है।

***

पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तकों में, लेखक की विचारधारा में डूब जाओ। यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है।

***

हिन्दूविश्वविद्यालय की संस्थापना विद्यार्थी के भीतर शारीरिक बल के साथ धर्म की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिए हुई है, इसे सदैव स्मरण रखो।

***

हिन्दी भाषा को यदि मैं आप के सामने यह कह दूँ कि यही सब बहिनों में माँ की अच्छी पहली पुत्री है, अपने माता और पिता की होनहार मूर्ति है, तो अत्युक्ति न होगी।

***

जब हिन्दी का सब बहनों से सम्बन्ध है, और ऐसी जब यह बड़ी बहन है, तब इसको मानकर यदि प्रान्त-प्रान्त की भाषाओं का सेवन किया जाय तो बहुत ही उपकार होगा।

***

जहाँ तक हो हिन्दी में हिन्दी ही रखी जाय।

***

बिजली की रोशनी से रात्रि का कुछ अन्धकार दूर हो सकता है, किन्तु सूर्य का काम बिजली नहीं कर सकती। इसी भाँति हम विदेशी भाषा के द्वारा सूर्य का प्रकाश नहीं कर सकते। साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा द्वारा ही हो सकती है।

***

आपका भारत धर्मप्रधान देश है। इसके चारों कोनों पर चार धाम हैं। अब आप ही सोचिये कि धार्मिक सम्बन्ध से सारे भारतवर्ष में कौन सी भाषा से काम चल सकता है। मेरी समझ में इसके लिए हिन्दी का ज्ञान बहुत आवश्यक है।

***

हमारे देश के भाइयों के मरने-जीने का न्याय हो; पर हो वह दूसरी भाषा में, यह कैसे आश्चर्य की बात है? वास्तव में न्याय उस भाषा में होना चाहिए जिसका एक-एक शब्द उसकी समझ में आता हो, जिसके लिए न्याय हो रहा है।

***

देवनागरी अक्षर संसार के सब अक्षरों से अधिक सरल और स्पष्ट हैं।

***

'न च मातृसमो गुरुः' पिता से दस गुना दर्जा माता का है। इतना उन्हें पढ़ा दो कि बच्चों को वह अपनी मातृभाषा में गुणा-भाग सिखा सकें। सौ श्लोकों अथवा दोहों के रत्नों की माला पहनाकर स्कूल में भेजें कि गुरु कह दें कि यह किस बड़भागिनी की कोख का बच्चा है।

***

मैं तो रेल में चलता हूँ और सन्ध्या का समय आने पर सन्ध्या कर लेता हूँ।

***

आप उन्हीं को खरीदिये जिनके खरीदने से अपने गरीब भाइयों को कुछ पैसा मिले।

***

आज भारत-सन्तान 'वार आफ रोजेज' पढ़ते हैं, अपने गौरव तथा इतिहास की चिन्ता नहीं करते।

***

सृष्टि में जितनी जातियों का इतिहास मिला है उनमें यह हिन्दू जाति सबसे प्राचीन है। यदि प्राचीनता से ही प्रेम है तो यह प्राचीन अवश्य है। किन्तु कोई केवल प्राचीनता के लिए आदर नहीं पा सकता। 'यह प्रेम के योग्य है' इस बात पर इसका आदर हो सकता है।

***

पीपल के वृक्ष की तरह हिन्दू सभ्यता की जड़ बहुत गहरी और बहुत दूर तक फैली है। ऋषियों के तपोबल तथा वायु और जल के आहार पर की गई उनकी तपस्या ने इसकी रक्षा की और इसी में यह कल्प-लता आज भी हरी है।

***

कुछ लोगों की धारणा है कि बुद्ध भगवान् ने धर्म का प्रचार किया था, किन्तु यह भ्रममात्र है। बुद्ध तो हमारे दस अवतारों में हैं। बड़ा मानकर ही शंकराचार्य ने बुद्ध को 'यतीनां चक्रवर्ती' कहा। बौद्ध-धर्म हमारे प्राचीन वैदिक-धर्म का एक अंग है।

***

मनुष्य का सबसे बड़ा धन 'धर्म' है।

***

मनुष्य अपने कपड़ों को रोज धोता है तथापि कई दिन पहन चुकने के बाद जब कपड़ा अधिक मैला हो जाता है तो उसको चौथे, आठवें या पन्द्रहवें दिन साबुन या रीठे से धोता है या धुलवाता है और उस कपड़े की मैल जो नित्य धोने पर भी बच जाती है, वह निकल जाती है। इसी प्रकार ऋषियों ने मनुष्य मात्र के हित के लिये प्रातःकाल और सायंकाल की सन्ध्या और उपासना-विधि के अतिरिक्त पन्द्रहवें दिन एकादशी व्रत का विधान किया है।

***

जो पाप पुराने होकर सूख गये या जो अभी ओदे अर्थात् तुरन्त के किये हैं उन सब पापों के धोने के लिए एकादशी का व्रत सबसे ऊँचा साधन है।

***

मनुष्य को परमात्मा ने सबसे बड़ी निधि बुद्धि दी है। जो वस्तु बुद्धि को मैली करती है या हर लेती है उसको मादक अर्थात् नशीला द्रव्य कहते हैं। मनुष्य को उचित है कि किसी प्रकार का नशीला पदार्थ कभी ग्रहण न करे।

***

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों के साधन का मूल कारण आरोग्य है।

***

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।
हिम्मत से कारज करो, पूरेंगे सब काम।।

***

मान प्रतिष्ठा और गौरव की रक्षा के लिये प्राण अर्पण करना अच्छा मालूम पड़ता है।

***

रोग की अवस्था में सबका विचार रोग के दूर करने का होना चाहिए, परन्तु औषधि भोजन नहीं है।

***

मैं जाति के भाव से ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक को भाई समझता हूँ। जाति के पक्ष से तथा जाति की ममता से हमें सब प्यारे हैं।

***

हम धर्म को चरित्र-निर्माण का सीधा मार्ग और सांसारिक सुख का सच्चा द्वार समझते हैं। हम देश-भक्ति को सर्वोत्तम शक्ति मानते हैं, जो मनुष्य को उच्चकोटि की निःस्वार्थ सेवा करने की ओर प्रवृत्त करती है।

***

शिक्षा सारे सुधारों की जड़ है।

***

जनता की स्थिति में उन्नति ही सुराज्य की वास्तविक परीक्षा है।

***

मालवीय जी का विद्यार्थियों के लिए उपदेश था :

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया ।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ।।

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति तथा आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सदा सम्मान के योग्य बनो। मालवीयजी चाहते थे कि विद्यार्थी सदा सत्य का आचरण करें, ब्रह्मचर्य और व्यायाम द्वारा अपनी जीवन शक्ति को परिपुष्ट करें, नियमित रूप से विद्याध्ययन कर अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास करें, स्वयं में अपने कुटुम्ब तथा अपने राष्ट्र की सेवा करने की क्षमता पैदा करें, सदा शुद्ध रहें और शील का पालन करें, अपने सद्व्यवहार के साथ अपने विद्यालय का गौरव बढ़ायें, गुरुजनों का आदर करें। सहपाठियों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें, छोटे कर्मचारियों के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करें, अपने से छोटों की सेवा अपना कर्तव्य समझें, दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करें जिसे वह अपने प्रति किया जाना अनुचित समझें, उन कार्यों से डरें जो त्याज्य हैं, मातृभूमि से प्रेम करें।

जनता की सुख वृद्धि करें, जहाँ कहीं भी अवसर मिले भलाई करें। वे चाहते थे कि विद्यार्थी अपने अवकाश तथा छुट्टियों में गाँवों में जाकर गाँव वालों के साथ काम करें, अविद्यारूपी अन्धकार को, जो हमारी अधिकांश जनता को आच्छादित किए हुए है, ज्ञान के प्रकाश से दूर करें। वे चाहते थे कि शिक्षित भारतीय शिक्षा, सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ सेवा के भाव को अपने जीवन में विकसित कर अपने छोटे भाइयों के उत्थान के लिए अपना अधिक से अधिक समय तथा शक्ति लगावें, उनके साथ मिलकर काम करें, उनके शोक तथा आनन्द में उनका हाथ बटावें और उनके जीवन को दिनों-दिन सुखमय बनाने का प्रयत्न करें। वे तो वास्तव में यह भी चाहते थे कि हम ईश्वर का स्मरण रखें तथा यह विश्वास रखते हुए कि ईश्वर सभी प्राणियों में विद्यमान है, अन्य जीवधारियों से अपना सच्चा सम्बन्ध स्थापित करें।

१९२९ में दिए गए दीक्षांत भाषण से।